

## चतुर्थ अध्याय

### जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विवेचन

#### 4.1 भगवान् महावीर: एक परिचय

जैन-दर्शन का प्रचार एवं प्रसार करने का श्रेय भगवान् महावीर को जाता है । उनका नाम वर्धमान था । उनका जन्म वैशाली में सिद्धार्थ के घर में हुआ जो कुण्डग्राम के ज्ञातृक क्षत्रियों के राजप्रमुख थे । उनका जीवन काल 599-527 ई० पू० स्वीकार किया गया है । वर्धमान की माता का नाम त्रिशला था, जो लिच्छवि गण मुख्य चेटक की बहन थी । महावीर के गृहत्याग से पूर्व का जीवन ऐश्वर्य व विलासिता में व्यतीत हुआ । उन्हें सभी प्रकार की राजकीय शिक्षा से शिक्षित किया गया था लेकिन उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति वैराग्यपूर्ण थी ।<sup>1</sup> वर्धमान का विवाह राजकुमारी यशोदा से हुआ जिससे प्रियदर्शना नामक पुत्री का जन्म हुआ । उनकी पुत्री का विवाह जमाली नामक क्षत्रिय से हुआ जो बाद में वर्धमान महावीर के अनुयायी एवं शिष्य बन गए ।<sup>2</sup> वर्धमान महावीर के 28 वर्ष की आयु में उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात् वर्धमान की निवृत्ति मार्ग की प्रवृत्ति अधिक बलवती हो गई । अतः एव, उन्होंने अपने बड़े भाई नन्दिवर्धन से आज्ञा लेकर गृहत्याग करके धार्मिक जीवन में प्रवेश किया । गृहत्याग के बाद उन्होंने जैन भिक्षु होकर तपस्या शुरू की । प्रथम वर्ष के पश्चात् वे बिल्कुल नग्न रहकर घुमने लगे ।

आत्मनिग्रह की तैयारी के इन 12 वर्ष की कठोर तपस्या के बाद जुम्बिका के समीप ऋतुवालिका नदी के तट पर वर्धमान को कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई ।<sup>3</sup> कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् वे मोक्षमार्ग के संस्थापक माने जाने लगे। ज्ञान प्राप्ति के बाद अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के कारण उन्हें 'जिन' की उपाधि दी गई । अपने अतुल पराक्रम के प्रदर्शन के कारण उन्हें महावीर नाम दिया गया ।<sup>4</sup> जैन मत के प्रचार-प्रसार में भगवान् महावीर ने अकथनीय प्रयास किए । ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने मृत्यु समय तक अपना जीवन धार्मिक पद्धति के प्रचार और तपस्वियों के साथ व्यतीत किया । उन्होंने किसी नये मत की स्थापना नहीं कि अपितु पूर्व से विद्यमान 23 तीर्थकरों के सिद्धान्तों के प्रचारक व व्याख्याकार की भूमिका का निर्वहन किया । महावीर के अधिकतर अनुयायी कुलीन व क्षत्रिय वर्ग से संबंध रखते थे जिसमें पुरुष और महिलाएं दोनों ही थे । सभी अनुयायियों में आश्रमवासियों के अतिरिक्त साधारण नागरिक भी सम्मिलित थे । महावीर से प्रभावित होकर श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों ही मतों के अनुयायी उनकी संस्था में सम्मिलित हो गए । परन्तु पुनः दोनों मत लगभग 79 ई० में विभाजित हो गए ।<sup>5</sup> महावीर ने घूम-घूम कर जनता को सत्य, अहिंसा व त्रिरत्न का उपदेश दिया । उन्होंने 'अहिंसा परमो धर्मः' के सिद्धांत को प्रसारित करने में अहम् योगदान दिया । जैन मत की परम्परा में महावीर को 24वां अंतिम तीर्थकर माना गया है । उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए त्रिरत्न का मार्ग प्रस्तुत किया । पार्श्वनाथ जैनों के

लिए चार व्रतों के पालन को आवश्यक मानते थे जबकि महावीर पंचव्रत के पालन को अनिवार्य मानते थे ।<sup>6</sup>

#### 4.2 जैन-दर्शन : एक परिचय

जैन-दर्शन का विकास बौद्ध-दर्शन के साथ ही हुआ । दोनों दर्शन छठी शताब्दी ई० पू० में विकसित हुए इसलिए दोनों को समकालीन दर्शन कहा जा सकता है । जैन मत के विकास में चौबीस तीर्थकरों की लंबी परम्परा रही है । ऋषभदेव को प्रथम तीर्थकर व महावीर को अंतिम तीर्थकर माना गया है । 23वें तीर्थकर पार्श्वनाथ का ज्ञान इतिहास से प्राप्त होता है, अन्य तीर्थकरों के संबंध में इतिहास मौन है । जैन-दर्शन में तीर्थकर उन्हें कहा जाता है जो अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करके बंधन से मुक्ति पाकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । तीर्थकरों को 'जिन' भी कहा जाता है ।<sup>7</sup>

जैन शब्द 'जिन' से बना है और 'जिन' शब्द 'जि' से बना है 'जि' से अभिप्राय है 'विजय' और 'जिन' का अर्थ है विजेता अर्थात् जो कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है वह 'जिन' है और कालान्तर में 'जिन' धर्म के अनुयायी जैन कहलाने लगे । जैन मत के प्रवर्तक चौबीस तीर्थकर थे, परन्तु जैन-दर्शन को विकसित व प्रसारित करने का श्रेय भगवान् महावीर को प्राप्त है । जैन-दर्शन महावीर के उपदेशों पर आधारित है ।<sup>8</sup>

जैन-दर्शन अवैदिक दर्शन है क्योंकि यह वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार नहीं करता । जैन-दर्शन ईश्वर में विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है । जैन-दर्शन में अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया गया है । जैन-दर्शन आत्मा को स्वीकार करता है उनके अनुसार आत्मा विश्व की भिन्न-भिन्न वस्तुओं में विद्यमान है । जैन-दर्शन का प्राणिमात्र का यथार्थ रूप में वर्गीकरण, ज्ञान का सिद्धांत तथा उसके साथ प्रमुख सिद्धांत स्याद्वाद एवं सप्तभंगी और संयमप्रधानता नीतिशास्त्र की प्रमुख विशेषताएं हैं । जैन-दर्शन में नीतिविद्या या शीलाचार तो महावीर के पूर्वपुरुषों से भी विकसित हुए परन्तु ज्ञान संबंधी प्रमुख सिद्धांत महावीर द्वारा दिया गया है।<sup>9</sup>

अन्य भारतीय दर्शनों की तरह जैन-दर्शन भी मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य मानता है । मोक्ष बन्धन का प्रतिलोम है । जैन-दर्शन ने बन्धन का मूल कारण क्रोध, लोभ और माया को माना है । इन कुप्रवृत्तियों का उद्भव अज्ञान के कारण होता है और अज्ञान का अंत ज्ञान से ही किया जा सकता है । जैन-दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान, व सम्यग्-चरित्र तीनों को आवश्यक माना गया है । जैन-दर्शन के अनुसार इस बंधन से मुक्ति व बुराइयों का नाश त्रिरत्न व पंच महाव्रत के मार्ग पर चलकर ही किया जा सकता है ।<sup>10</sup> जिनकी विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी । कालांतर में मतभेदों के कारण जैन-दर्शन श्वेताम्बर व दिगम्बर सम्प्रदायों में विभाजित हो गया । दोनों सम्प्रदायों में दार्शनिक सिद्धांत संबंधी मतभेद न होकर नैतिक सिद्धांत-संबंधी

मतभेद है । दिगम्बरपंथियों का मानना है कि मोक्ष की प्राप्ति केवल उसी साधक को हो सकती है जो अपने पास कुछ भी सम्पत्ति नहीं रखता, वह वस्त्र भी धारण नहीं करता । इनके अनुसार स्त्री को मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार नहीं है । जबकि श्वेताम्बर मत उदारवादी है तथा श्वेताम्बर पंथी श्वेत वस्त्र धारण करते हैं ।<sup>11</sup>

### 4.3 जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्य

जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत त्रिरत्न (सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-चरित्र) की विस्तृत चर्चा की जायेगी । बढ़ते वैचारिक द्वन्द्व के संदर्भ में जैन-दर्शन द्वारा प्रतिपादित स्याद्वाद की व्याख्या करना भी उपयुक्त प्रतीत होता है ।

#### 4.3.1 त्रिरत्न

जैन-दर्शन में वर्णित त्रिरत्न केवल व्यक्ति को जीने का तरीका ही नहीं बताते अपितु एक सम्पूर्णता की ओर पथ प्रदर्शित करते हैं । त्रिरत्न के पालन से न केवल व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य अपितु एक समाज से दूसरे समाज, एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र अर्थात् सम्पूर्ण विश्व में सम्यग् वातावरण का निर्माण होता है जिससे शांति व सौहार्द का विकास होता है। वर्तमान में आतंकवाद, भुखमरी, विद्वेष की समस्याएं व्यक्तिगत या राष्ट्रीय न रहकर अंतर्राष्ट्रीय हो गई हैं । अतः आज हमें आवश्यकता है कि सम्पूर्ण विश्व को ही शांति, भाइचारे, सौहार्द व सहिष्णुता की भावना का पाठ पढ़ाया जाए, नैतिक मूल्यों का विकास किया जाए तथा

भौतिकवादी विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास भी किया जाए । जैन-दर्शन के त्रिरत्न से व्यक्ति के जीवन में पूर्णता आती है । इससे हम संयमी, जागरूक तथा चरित्र सम्पन्न बनते हैं । तभी हमारे राष्ट्र तथा विश्व का कल्याण संभव है । जैन-दर्शन के त्रिरत्न एक-दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे से समन्वय रखते हैं । मोक्ष प्राप्ति में तीनों का समान महत्त्व है । जैसे एक रोगग्रस्त व्यक्ति को रोग से छुटकारा पाने के लिए चिकित्सक के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए, उसके द्वारा दी गई दवाओं का ज्ञान होना चाहिए और चिकित्सक के अनुसार आचरण भी करना चाहिए । इसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान और सम्यग्-चरित्र का समन्वित रूप से पालन अति आवश्यक है ।<sup>12</sup> उमा स्वामी के ये कथन इसकी पुष्टि करते हैं - सम्यकदर्शन ज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः ।<sup>13</sup> जैन-दर्शन में सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-चरित्र को त्रिरत्न कहा गया है । यही मोक्ष के मार्ग हैं । त्रिरत्न की व्याख्या इस प्रकार है -

#### 4.3.1.1 सम्यग्-दर्शन

सम्यग्-दर्शन त्रिरत्न का मूल आधार है । सम्यग्-दर्शन को सम्यग्-ज्ञान और सम्यग्-चरित्र पर वरीयता दी गई है । एक बार सम्यग्-दर्शन हो जाने पर सम्यग्-ज्ञान और चरित्र के मार्ग पर मनुष्य स्वभावतः आगे बढ़ता जाता है । सत्य के प्रति श्रद्धा की भावना रखना 'सम्यग्-दर्शन' कहा गया है । तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि, "तत्त्व रूप

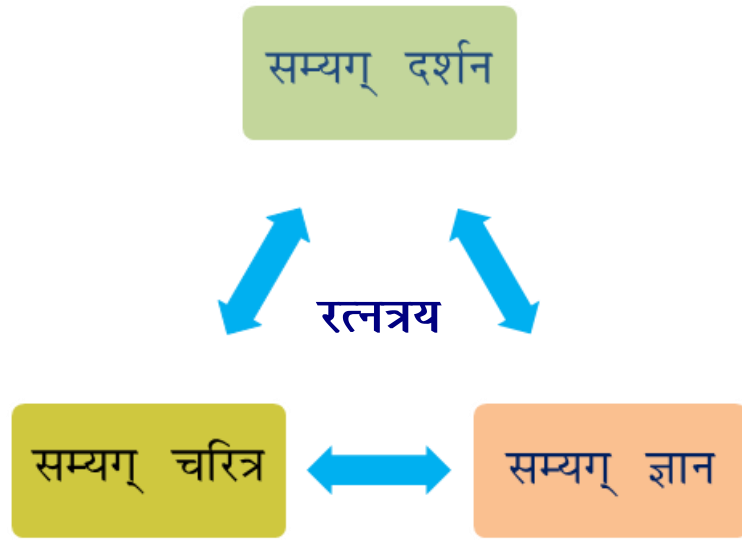
पदार्थों की श्रद्धा अर्थात् दृढ़ प्रतीति सम्यग्-दर्शन है ।”<sup>14</sup> जैन-दर्शन में सात तत्त्व जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष बताए गए हैं ।<sup>15</sup> इन सात तत्त्वों में पाप और पुण्य को भी सम्मिलित कर दिया जाए तो तत्त्वों की संख्या नौ हो जाती है ।<sup>16</sup> इन नौ तत्त्वों का सही रूप में देखना ही सम्यग्-दर्शन है । सम्यग्-दर्शन से उचित लक्ष्य का निर्धारण होता है जो हमारी चेतना को उसे प्राप्त करने के लिए निर्देशित करता है । सम्यग्-दर्शन हमें लक्ष्य, दिशा तथा संतुलित उपागम, प्रेरणा तथा प्रतिबद्धता की ओर प्रेरित करता है ।<sup>17</sup>

जैन साहित्य में सम्यग्-दर्शन के अर्थ में ‘श्रद्धा’ शब्द का प्रयोग हुआ है । श्रद्धा दो शब्दों से बना है ‘श्रत’ और ‘धा’ । श्रत का अर्थ ‘अव्यव’ है जिसका यहां पर कोई अर्थ नहीं है । ‘ध’ का अर्थ है ‘धारण करना’ जिससे अभिप्राय है निर्धारण करना, प्रतिबद्ध होना ।<sup>18</sup> निश्चित तौर पर प्रतिबद्धता व निर्धारण तब ही होगा जब हम लक्ष्य, इच्छा शक्ति और दिशा के प्रति जागरूक होंगे । इस प्रकार श्रद्धा से अभिप्राय है कि रूची, सोच-विचार या समझ के प्रति प्रतिबद्ध होना । श्रद्धा हमें वास्तविकता के प्रति जागरूक तथा समझ विकसित करती है । यह दृढ़ विश्वास अंतर्ज्ञान व सहज ज्ञान का मूल है लेकिन अंधविश्वास नहीं है।<sup>19</sup> अपने अज्ञान से घृणा और यथार्थ ज्ञान या सत्य ज्ञान के प्रति श्रद्धा रखना सम्यग्-दर्शन है । इस श्रद्धा को अंधविश्वास में परिवर्तित होने से बचाने के लिए इसके साथ तार्किकता का भी ध्यान रखना अनिवार्य है ।<sup>20</sup>

सम्यग्-दर्शन के उद्भव के संदर्भ में कहा गया है कि “वह सम्यग्-दर्शन निसर्ग अर्थात् स्वभाव से और अधिगम अर्थात् सद्गुरु के उपदेशादि बाह्य निमित्त से उत्पन्न होता है ।”<sup>21</sup> सम्यग्-दर्शन से विश्व के सभी पदार्थों की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान होता है । जैन-दर्शन हमें बताता है कि सबसे पहले हमें वास्तविकता या सच्चाई को जानना चाहिए, अपने आप को जानना चाहिए तथा सही मार्ग व लक्ष्य को जानना चाहिए। एक बार हमें वास्तविकता का विश्लेषण या परीक्षण करने पर उसकी सत्यता की पुष्टि करनी चाहिए और यदि हम उससे संतुष्ट हो जाते हैं तब उस सत्य को स्वीकार करना चाहिए ।

व्यावहारिक संदर्भ में सम्यग्-दर्शन का अर्थ है, कि तीर्थकरों और उसके आगमों की शिक्षाओं पर पूर्ण विश्वास करना । सम्यग्-दर्शन सही और गलत, अच्छे और बुरे, सही विश्वास और गलत धारणा, सही ज्ञान और गलत ज्ञान के बीच तथा सत्य और असत्य के बीच सही ढंग से भेदभाव करने की क्षमता के साथ आता है ।<sup>22</sup> पारंपरिक अर्थ में सम्यग्-दर्शन सही मान्यताओं और तीर्थकरों तथा उनकी शिक्षाओं के बारे में सही सोच होने से, जीव और अजीव के बीच अंतर जानने से होता है । इस प्रकार सम्यग्-दर्शन मोक्ष प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है ।





चित्र 4.1

#### 4.3.1.2 सम्यग्-ज्ञान

सम्यग्-दर्शन हमें जीवन की वास्तविकता व जीवन के उद्देश्य की गंभीरता को बताता है । सम्यग्-ज्ञान आत्मा का सही, उपयुक्त व सार्थक ज्ञान ही है अर्थात् आत्मा को जानना ही सम्यग्-ज्ञान है ।<sup>23</sup> यथार्थ को जानने के लिए हमें संसार के संघटक तत्वों व उसके संबंध को जानना पड़ेगा । व्यावहारिक दृष्टि से सम्यग्-ज्ञान का अर्थ है संसार के छः द्रव्यों और नौ तत्वों का यथार्थ ज्ञान होना । संसार के छः द्रव्य हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । नौ तत्व हैं - जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष । सम्यग्-ज्ञान से जीव और अजीव में स्पष्ट भेद हो जाता है ।

दार्शनिक तौर पर यथार्थ ज्ञान अनेकान्तवाद के सिद्धान्त से जाना जाता है। जैन-दर्शन का स्याद्वाद ज्ञान की सापेक्षता का सिद्धान्त है ।

जैन-दर्शन का ज्ञान का सिद्धान्त दो सिद्धान्तों अनेकान्तवाद तथा सापेक्षतावाद को समाविष्ट किए हुए है। यह जीव को मोक्ष की ओर ले जाने में उत्कृष्ट योगदान करता है।<sup>24</sup> सम्यग्-ज्ञान संशयहीन, भ्रमरहित व अनिश्चितता से मुक्त होता है। सम्यग्-ज्ञान सम्यग्-दर्शन के द्वारा हमें द्रव्य का विस्तार से परीक्षण करने में सक्षम बनाता है। सम्यग्-ज्ञान और सम्यग्-दर्शन मानसिक प्रक्रियाएं हैं। सम्यग्-दर्शन से सम्यग्-ज्ञान होता है और सम्यग्-ज्ञान से सम्यग् आचरण को धारण करने की शक्ति आती है।<sup>25</sup>



चित्र 4.2

जैन-दर्शन में मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्याय व केवल ज्ञान ज्ञान के पाँच भेद<sup>26</sup> बताए गए हैं-

#### (क) मति

यह ज्ञान इंद्रिय और मन से होने वाला ज्ञान है। मतिज्ञान इंद्रिय और अनिन्द्रिय के निमित्त से उत्पन्न होता है। तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोध मति ज्ञान के पर्यायवाची हैं।<sup>27</sup>

**(ख) श्रुत**

यह शास्त्रों से होने वाला ज्ञान है, श्रुत ज्ञान आप्त वचन होने के कारण परिणाम से परे और विशुद्ध है ।<sup>28</sup>

**(ग) अवधि**

देश और काल की दूरी रहते हुए भी विषयभूत पदार्थ को जाने, उसे अवधिज्ञान कहते हैं ।<sup>29</sup> दूरवर्ती तथा व्यवधान वाले पदार्थों का ज्ञान, जो विशिष्ट योगियों को होता है; इसके द्वारा योगी केवल रूप वाले पदार्थों को ही देख सकता है ।

**(घ) मनः पर्याय**

दूसरों के वर्तमान और भूत मनोभावों का प्रत्यक्ष ज्ञान मनः पर्याय ज्ञान है।<sup>30</sup>

**(ङ) केवल ज्ञान**

सर्वज्ञों का ज्ञान जिनके द्वारा वे विश्व के समस्त पदार्थों एवं उनके परिवर्तनों को एक साथ जानते हैं ।<sup>31</sup>

ज्ञान के इन पांच प्रकारों को प्रत्यक्ष ज्ञान व अप्रत्यक्ष ज्ञान में बाँटा गया है । प्रथम दो अप्रत्यक्ष ज्ञान के भेद हैं जो कम विश्वसनीय हैं और अंतिम तीन प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति के भेद हैं जो अधिक विश्वसनीय हैं । अप्रत्यक्ष ज्ञान त्रुटिपूर्ण, अमान्य व असत्य हो सकता है लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान एकदम सटीक होता है ।<sup>32</sup>



चित्र 4.3

सम्यग्-ज्ञान आत्मा के द्वारा स्वयं किया जाता है । आत्मा का भौतिक तत्त्वों से मुक्त होकर सत् का दर्शन करना ही सही ज्ञान है । जीव और अजीव में स्पष्ट अंतर का ज्ञान हो जाना ही सम्यग्-ज्ञान है।<sup>33</sup> आत्मा या जीव के ज्ञान को जानने के लिए भौतिक अर्थात् अजीव को भी जानना आवश्यक है जो जीव को प्रमाणित करते हैं । अजीव अर्थात् पुद्गल के ज्ञान के बिना हम जीव की विभिन्न अवस्थाओं को नहीं जान सकते और न ही आध्यात्मिकता के गुण को प्राप्त कर सकते । सम्यग्-ज्ञान के बिना हमारा सम्पूर्ण ज्ञान व्यर्थ है । जीव की अज्ञानता के कारण ही हमारे सभी दुःख व कठिनाइयों का उद्भव होता है ।<sup>34</sup> धीरे-धीरे जब जीव कर्म से दूर हटता है तो जीव विभिन्न प्रकार के ज्ञान को अर्जित करने लगता है । सर्वप्रथम अवधारणात्मक ज्ञान होता है ।

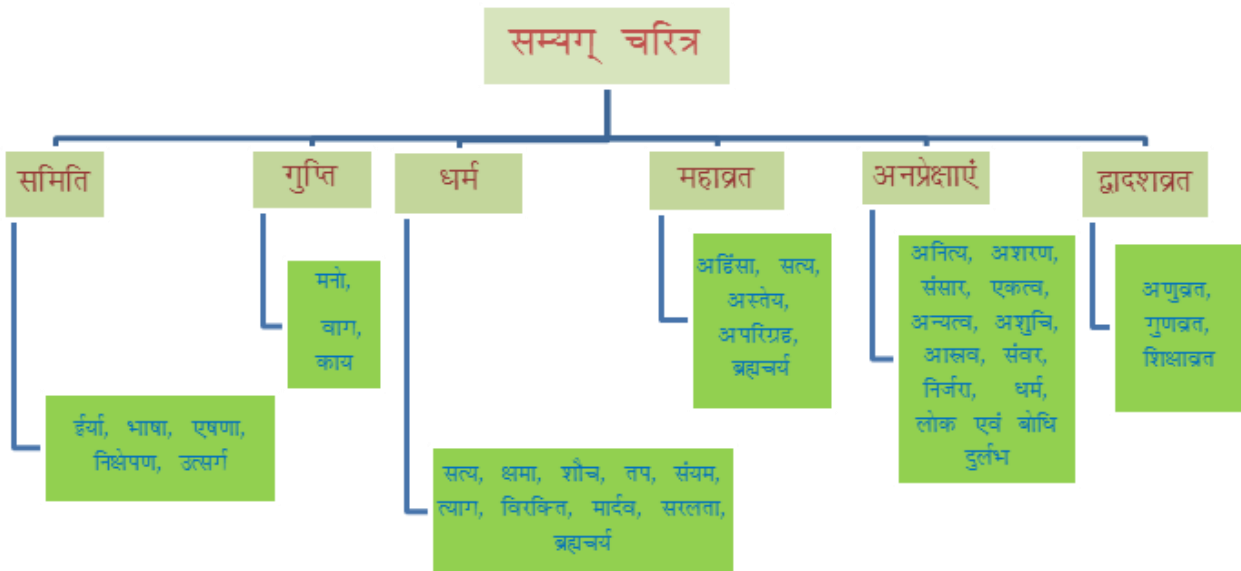
अवधारणात्मक ज्ञान होने से श्रुति ज्ञान को अर्जित करने की इच्छा जागृत होती है । श्रुतिज्ञान के सिद्धान्त के अध्ययन और अभ्यास से दूर की वस्तुओं और संवेदन का ज्ञान होता है । ये असाधारण शक्तियां जीव को उच्च ज्ञान प्राप्त जीवों के सम्पर्क में ले जाती हैं जिन्होंने आगे की शुद्धि के लिए अधिक ज्ञान प्राप्त किया है जैसे ही जीव ज्ञान के विभिन्न प्रकारों में निपुण हो जाता है वैसे ही वह धीरे-धीरे मुक्ति के मार्ग की तरफ बढ़ता जाता है । अंत में अन्तर्ज्ञानवादी अवस्था में जीवन पूर्ण व परिशुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लेता है ।<sup>35</sup>

#### 4.3.1.3 सम्यग्-चरित्र

जैन-नीतिशास्त्र के त्रिरत्न में सम्यग्-चरित्र तीसरा एवं अंतिम रत्न है। जैनियों के शब्दों में सम्यग्-चरित्र पहले दो रत्नों सम्यग्-दर्शन और सम्यग्-ज्ञान से प्राप्त प्रकाश से जीवन जीने का मार्ग है । हितकर कार्यों का आचरण और अहितकर कार्यों का वर्जन ही सम्यग्-चरित्र कहलाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यग्-दर्शन व सम्यग्-ज्ञान के साथ-साथ संयमित आचरण भी परमावश्यक है । सम्यग्-चरित्र मनुष्य को मन, वचन और कर्म पर नियंत्रण करने का निर्देश देता है । कर्म के कारण ही व्यक्ति दुःख और बन्धन के जाल में फंस जाता है । इसलिए कर्म से मुक्ति का अर्थ है दुःख और बंधन से छुटकारा पाना । मोक्ष के मार्ग में सम्यग्-चरित्र सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्ति में स्वयं पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास करता है ।<sup>36</sup> जैन-दर्शन में गृहस्थ व साधु जीवन के लिए अलग-अलग आचरण नियम बताए गए हैं । जैन-दर्शन में

चरित्र के दो भेद व्यवहारनय और निश्चयनय भी बताए गए हैं । हिंसाआदि पाप कर्मों का परित्याग ही व्यवहारनय चरित्र है जो व्यवहार से सम्बन्धित है । अपने आत्म स्वरूप को जानकर व उसके प्रति श्रद्धा करके प्रभाव व रागादि का परिहार करता है, वह निश्चयनय चरित्र है।<sup>37</sup>

सम्यग्-चरित्र के पालन के लिए निम्नलिखित आचरणों का पालन करना आवश्यक है-



चित्र 4.4

#### 4.3.1.3.1 समिति

समिति से अभिप्राय है सावधानी अर्थात् हमें कुछ सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए । जैन-दर्शन में पांच समितियाँ हैं । जो इस प्रकार हैं -

**(क) ईर्या समिति**

प्राणियों को पीड़ा न देते हुए विचरण व गमन करना अर्थात् हिंसा से बचने के लिये निश्चित मार्ग से जाना ईर्या समिति है ।

**(ख) भाषा समिति**

नम्र एवं हितकारक वाणी बोलना व कठोर वचन तथा परनिंदा का त्याग करना भाषा समिति है ।

**(ग) एषणा समिति**

भिक्षा मांगने के नियमों के पालन का निर्देश एषणा समिति में है ।

**(घ) आदान-निक्षेपण समिति**

वस्तुओं को उठाने और रखने में सतर्कता रखना, आदान-निक्षेपण समिति है ।

**(ङ) उत्सर्ग समिति**

शून्य स्थानों पर मल-मूत्र का विसर्जन करना, उत्सर्ग समिति है ।<sup>38</sup>

**4.3.1.3.2 गुप्ति**

समितियाँ चरित्र में सम्यग् प्रवृत्ति की साधिका हैं और गुप्तियाँ सभी प्रकार की अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्ति की साधिका हैं ।<sup>39</sup> मन, वचन तथा शारीरिक कर्मों पर संयम रखने को जैन-दर्शन में गुप्ति कहा गया है ।

**(क) मनो गुप्ति**

मन को स्थिर रखना, किसी को कष्ट पहुँचाने के संकल्प को मन में आने से रोकना मनोगुप्ति है ।

### (ख) वाग गुप्ति

कठोर, कष्टजनक व असत्य आदि वचनों का निरोध करना वाग गुप्ति है ।

### (ग) कायगुप्ति

शरीर पर संयमी द्वारा नियंत्रण करना काय गुप्ति है ।<sup>40</sup>

#### 4.3.1.3.3 दस धर्म

दस प्रकार के धर्मों का पालन करना भी आवश्यक है । दस धर्म इस प्रकार हैं - सत्य, क्षमा, शौच, तप, संयम, त्याग, विरक्ति, मार्दव, सरलता और ब्रह्मचर्य ।<sup>41</sup>

#### 4.3.1.3.4 पंच महाव्रत

पंच महाव्रत सभी आचरणों से महत्त्वपूर्ण माने गये हैं । पंच महाव्रत को बौद्ध-दर्शन में पंचशील कहा गया है । कुछ विद्वानों ने पंच महाव्रत का पालन ही सम्यग्-चरित्र के लिए पर्याप्त माना है । पंच महाव्रत इस प्रकार हैं -

##### 1. अहिंसा

जैन-दर्शन के पांच महाव्रतों में अहिंसा सबसे महत्त्वपूर्ण है । यह जैन-दर्शन की आधारशिला है । प्रमत्तयोग से प्राणों का वध करना हिंसा है ।<sup>42</sup> प्राणों से प्राणियों का वियोग करना प्राणातिपात है, इससे विरत होना ही प्राणातिपात-विरमण है जो अहिंसा का ही दूसरा नाम है । अहिंसा कामधेनु के समान मन वांछित फल देती है । जानबूझकर स्थावर जीवों



के प्राणों का हनन न करना प्रथम अहिंसा महाव्रत माना गया है ।<sup>43</sup> आचारांग सूत्र में कहा गया है कि किसी भी परिस्थिति में किसी भी प्राणी का जीवन पर्यन्त प्राणघात नहीं करना, दूसरों से भी नहीं करवाना तथा हिंसा करने वालों का समर्थन भी नहीं करना अहिंसा है ।<sup>44</sup>

अहिंसा सर्वोच्च धर्म है, अर्थात् 'अहिंसा परमो धर्मः' । अहिंसा का अर्थ है-हिंसा का परित्याग करना । अहिंसा का पालन मन, वचन और कर्म से करना चाहिए । अहिंसा से अभिप्राय केवल जीवों की हिंसा न करना ही नहीं है अपितु उनके प्रति प्रेम का भाव भी व्यक्त करना चाहिए । भगवती अराधना में बताया है कि जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही अन्य प्राणियों को भी दुःख प्रिय नहीं है, यही विचार मन में रखकर दूसरे प्राणियों के साथ भी अपने जैसा व्यवहार करना चाहिए । अहिंसा महाव्रत सत्य आदि आगे के चार महाव्रतों का मूलाधार है, इसके बिना अन्य का पालन संभव नहीं है । सत्य, शील तथा व्रत आदि जितने भी उत्तम कार्य हैं, उन सब की माता एकमात्र अहिंसा है । अहिंसा की स्थिरता में पांच भावनाएं सहकारी हैं जो 1. ईर्या समिति 2. मनोगुप्ति 3. वागगुप्ति 4. आलोकभाजन भोजन 5. आदान भण्डमात्रनिक्षेपण समिति, है ।

जैन-दर्शन में सभी जीवों को समान माना है इसलिए जैन-दर्शन में किसी भी जीव की हिंसा करना अधर्म है ।

## 2. सत्य

सत्य से अभिप्राय है असत्य का परित्याग करना । वह सत्य सुनृत होना चाहिए अर्थात् वह सत्य जो प्रिय एवं हितकारी हो । असत् बोलना अनृत है ।<sup>45</sup> सत्य में केवल झूठ का ही परित्याग करना नहीं है अपितु मधुर वचनों का भी प्रयोग करना चाहिए । दूसरों को प्रिय, हितकारी और यथार्थ वचन बोलना सत्यव्रत है, लेकिन यदि वचन अप्रिय या अहितकर हैं तो वह तथ्यवचन होने पर भी सत्यवचन नहीं कहलाता । राग, द्वेष, क्रोध, भय और मोह आदि दोषों से युक्त असत्य वचन, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले सत्यवचन तथा सूत्रार्थ के विकथन में अपरमार्थ वचन-इन सभी का परित्याग करना सत्य महाव्रत है ।<sup>46</sup> क्रोध, लालच, भय और उपहास असत्य का प्रजनन करने वाले कारक हैं । सत्य बोलने के लिए नैतिक साहस की जरूरत होती है । जो व्यक्ति क्रोध, लालच, भय और उपहास पर विजय प्राप्त कर लेता है वही व्यक्ति सत्य का पालन कर सकता है। सत्य का अपर नाम मृषावाद-विरमण है जिसका अर्थ है मृषा यानि झूठ, और विरमण या विरत अर्थात् झूठ से अलग होना । स्थूल झूठ न तो स्वयं बोलता है और न ही अन्य से ही बुलवाता । जिससे दूसरों को पीड़ा होती हो ऐसी सत्य वाणी भी नहीं बोलनी चाहिए ।<sup>47</sup>

क्रोध, लोभ, भय, हास्य - इनका त्याग और सूत्रानुसार बोलना, ये पाँच सत्य व्रत की भावनाएं बताई गई हैं ।<sup>48</sup>

### 3. अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है चोरी का निषेध अर्थात् किसी की सम्पत्ति को उसकी सहमती के बिना नहीं लेना । किसी भी वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण नहीं करना अस्तेय व्रत है । किसी भी उस वस्तु को नहीं उठाना जो हमारी नहीं है । अवलोकन करने पर यह व्रत बहुत कठोर प्रतीत होता है क्योंकि किसी मूल्यहीन वस्तु को भी छूने की मनाही है जो हमारी नहीं है । जैन-दर्शन में माना गया है कि धन मनुष्यों के बाह्य प्राण हैं, उसके हरण हो जाने पर प्राणी के प्राणों का ही हनन हो जाता है ।<sup>49</sup> जब हम किसी से दान, सहायता या मदद प्राप्त करते हैं तो हमें उसे भी आवश्यकता से अधिक प्राप्त नहीं करना चाहिए । आवश्यकता से अधिक की प्राप्ति को जैन-दर्शन में चोरी अर्थात् अस्तेय माना गया है । अस्तेय व्रत मन, वचन व कर्म से पूर्णतः ईमानदार होने पर बल डालता है ।

बिना अनुमति के एक तिनका उठाना भी पाप समझा जाता है । श्रमण को तपस्या, वाणी, रूप, आचार और भाव की भी चोरी का निषेध किया गया है ।<sup>50</sup> जैन-दर्शन के अनुसार हमें स्वयं भी चोरी नहीं करनी चाहिए न ही दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रेरित करना चाहिए और न ही इस तरह की क्रियाओं को करने की अनुमति देनी चाहिए । अतः चोरी का निषेध करना चाहिए । चोरी निषेध को नैतिक अनुशासन कहा गया है।

तत्त्वार्थ सूत्र में शून्यागारावास, व्यक्तावास, परोपरोधाकरण (दूसरों के आने में रूकावट न डालना), भिक्षाचार्य की शुद्धि और सधर्माविसंवाद अर्थात् साधर्मीजनों से वाद-विवाद न करना आदि अस्तेय व्रत की पाँच भावनाएं बताई गई हैं।<sup>51</sup>

#### 4. ब्रह्मचर्य

वासना व पांचों इन्द्रियों के सुख के त्याग को ब्रह्मचर्य कहा गया है। मानव अपनी वासनाओं एवं कामनाओं के वशीभूत होकर ऐसे कामों को प्रश्रय देता है जो पूर्णतः अनैतिक है। जैन-दर्शन के अनुसार ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी प्रकार की कामनाओं का परित्याग करना। लौकिक - अलौकिक, अपना-पराया, आंतरिक-बाह्य सभी प्रकार के आत्म भोग के त्याग को ब्रह्मचर्य पालन के लिए आवश्यक माना गया है। जैन-दर्शन में भिक्षुओं को ब्रह्मचर्य का अनुशासनपूर्ण व पूर्ण रूप से पालन करने के लिए कहा गया है जबकि गृहस्थों को कुछ नियमों में रियायत दी गई है। जैन-दर्शन में केवल विषय सुख का ही परित्याग मात्र नहीं करना अपितु शरीर, मन, वचन से विषय के सुख और उसकी इच्छा का परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य व्रत है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले भिक्षु को मन में विषय के प्रति आनन्द पैदा करने वाली तथा काम-भोग की आसक्ति बढ़ाने वाली स्त्री-संबंधी वार्ता को छोड़ देना चाहिए।<sup>52</sup> ब्रह्मचर्य व्रतधारी को मनोज्ञ विषयों में राग-भाव का निषेध है।<sup>53</sup> महिलालोकन विरति, पूर्व रति स्मरण विरति, संसक्त वसति विरति, विकथा विरति तथा प्रणीत रस

विरति पाँच ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ हैं । इन पाँच भावनाओं द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा करनी चाहिए ।<sup>54</sup>

## 5. अपरिग्रह

अपनी शारीरिक रक्षा के लिए धन, सम्पत्ति, भोग-सामग्री अथवा अन्य वस्तुओं को जरूरत से अधिक केवल भोग के लिए स्वार्थ की दृष्टि से संग्रह करना परिग्रह है । इनका संग्रह नहीं करना अपरिग्रह है । एक योगी के लिए सबसे बड़ा अपरिग्रह तन, मन और वाणी से मोह और अहंकार का परित्याग करना है । लालच, मोह और अहंकार ही परिग्रह का मूल कारण है ।

रूप, स्पर्श, गंध, स्वाद, शब्द इत्यादि इन्द्रियों के विषयों का परित्याग करना अपरिग्रह है । सांसारिक वस्तुएं आसक्ति पैदा करती हैं । उसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य पापपूर्ण कर्म भी करने लगता है । उनके प्रति निरन्तर आसक्ति से लालच, ईर्ष्या, स्वार्थता, हिंसा, अहंकार पैदा होता है । महावीर ने कहा है कि इच्छाओं की कोई सीमा नहीं होती केवल आकाश ही इसकी सीमा है । सांसारिक वस्तुओं में विषयासक्ति के कारण ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में बंध जाता है । बंधन से मुक्ति पाने के लिए इन्द्रिय सुख के प्रति आसक्ति को त्यागना आवश्यक है । अतः अपरिग्रह, अर्थात् सांसारिक विषयों से निर्लिप्त रहना आवश्यक माना गया है। जैनाचार्यों के अनुसार अपरिग्रह का भी मन, वचन व कर्म से पालन करना चाहिए । समवायांग सूत्र में श्रोतेन्द्रिय रागोपरती, चक्षु-इन्द्रिय

रागोपरती, घ्राणेन्द्रिय रागोपरती, रसनेन्द्रिय रागोपरती और स्पर्शनेन्द्रिय रागोपरती आदि अपरिग्रह की पाँच भावनाएं बताई गई है।<sup>55</sup>

#### 4.3.2 अनुप्रेक्षाएं (भावनाएं)

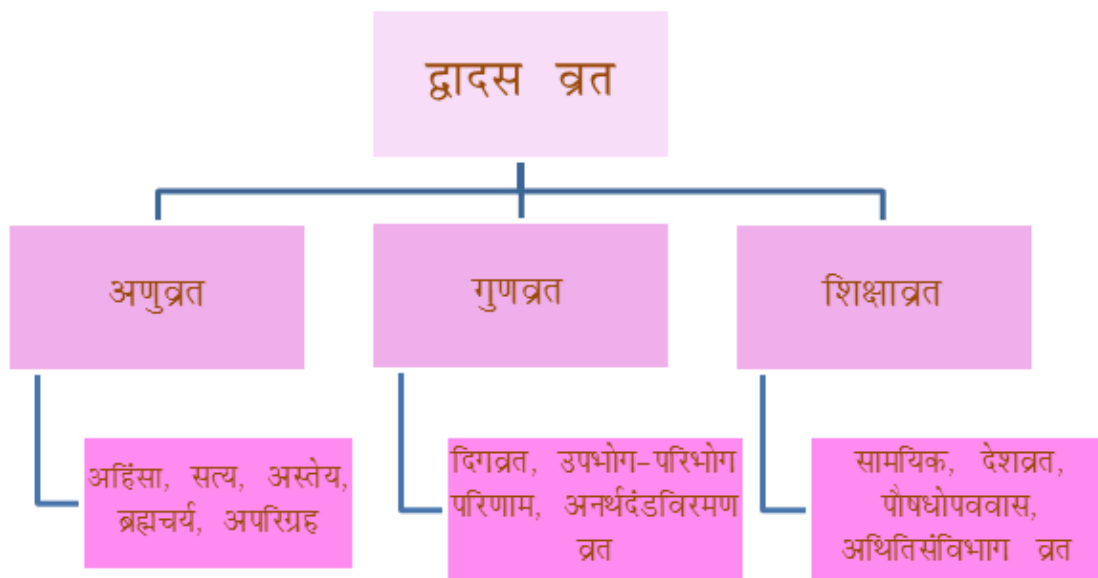
वैराग्य प्राप्त हेतु जाने हुए अर्थ का मन व शरीर से बार-बार अभ्यास व चिंतन करना अनुप्रेक्षा है, इसे भावना भी कहा जाता है।<sup>56</sup> अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म, लोक एवं बोधि दुर्लभ आदि बारह अनुप्रेक्षाएं हैं। जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है -

1. इस संसार में धर्म को छोड़कर सब वस्तुएं अनित्य हैं - इस प्रकार का चिंतन **अनित्यानुप्रेक्षा** है।<sup>57</sup>
2. माता, पिता, भाई, बहन, संतान आदि भी मनुष्य के यमलोक में जाते हुए कोई रक्षा नहीं कर पाता। सत्य को छोड़कर किसी अन्य की शरण ग्रहण न करने की भावना **अशरणानुप्रेक्षा** है।<sup>58</sup>
3. चारों गतियों में नानाविध दुःख ही संसार का सार है। इसके सार व स्वरूप को समझते हुए चिन्तन करना ही **संसारानुप्रेक्षा** है।<sup>59</sup>
4. साधक का यह चिंतन करना कि मैं अकेला हूँ, एक हूँ, इस संसार में मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ, यह

- शरीर भी मेरा नहीं है, इस बात का चिंतन करना **एकत्वानुप्रेक्षा** है ।<sup>60</sup>
5. संसार के सभी जीव एक दूसरे से भिन्न है, ऐसा चिंतन **अन्यत्वानुप्रेक्षा** है ।<sup>61</sup>
6. नश्वर शरीर अपवित्र है, इस प्रकार चिंतन करना **अशुचित्वानुप्रेक्षा** है ।<sup>62</sup>
7. मन, वचन व शरीर से किया गया कार्य ही शुभ-अशुभ कर्मों का आस्रव द्वार है । कर्मों के प्रवेश (आस्रव) की भावना ही **आस्रवानुप्रेक्षा** है ।<sup>63</sup>
8. कर्म प्रवेश निरोध (संवर) की भावना **संवरानुप्रेक्षा** है ।<sup>64</sup>
9. पहले से प्रविष्ट कर्मों को नष्ट करने (निर्जरा) की भावना का चिंतन करना **निर्जरानुप्रेक्षा** है ।<sup>65</sup>
10. अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है । ऐसे धर्म-स्वरूप का चिन्तन करना **धर्मानुप्रेक्षा** है ।<sup>66</sup>
11. यह लोक अनन्तकाल से स्वयंसिद्ध है इसे न किसी ने धारण किया और न किसी ने बनाया, यह भावना **लोकानुप्रेक्षा** है ।<sup>67</sup>
12. त्रिरत्न (सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-चरित्र) की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है । इस तरह का मनन करना **बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा** है ।<sup>68</sup>

### 4.3.3 द्वादश व्रत

जैन-दर्शन में गृहस्थ के चरित्र पालन के बारह प्रकार स्वीकार किए गए हैं इनमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सम्मिलित हैं।<sup>69</sup>



चित्र 4.5

### पाँच अणुव्रत

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का सर्वांश में पालन महाव्रत है और इनका अल्पांश में पालन अणुव्रत है । गृहस्थ के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह से अल्पांश में विरति का विधान है, जिसे अणुव्रत कहा गया है । इन व्रतों को स्थिर रखने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाएं वर्णित हैं, जिनकी चर्चा पूर्व में की गई है ।<sup>70</sup>



### 1. अहिंसाणुव्रत : स्थूल प्राणातिपात विरमणव्रत

अनावश्यक रूप से कोई ऐसा कार्य न करना जिससे किसी प्राणी को पीड़ा होती हो या हिंसा होती हो, अहिंसा अणुव्रत है ।

### 2. सत्य अणुव्रत : स्थूल मृषावाद-विरमण व्रत

किसी भी परिस्थिति में अनावश्यक रूप से झूठ न बोलना, सत्य अणुव्रत है ।

### 3. अस्तेय अणुव्रत : स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत

मालिक की अनुमति के बिना किसी भी द्रव्य को न छूना अस्तेय अणुव्रत है ।

### 4. ब्रह्मचर्याणुव्रत

अपनी पत्नी या पति के अतिरिक्त किसी से शारीरिक संबंध न बनाना तथा काम इच्छा को जाग्रत करने वाली बातों से दूर रहना, ब्रह्मचर्य अणुव्रत है ।

### 5. परिग्रह-परिमाण व्रत

जीवन व्यतीत करने हेतु आवश्यक सामग्री का ही संग्रह करना, परिग्रह अणुव्रत है ।

इनकी विस्तृत चर्चा पंच महाव्रत में की गई है ।

### गुणव्रत

गुण का अर्थ वृद्धि है । गुणव्रत अणुव्रतों के गुणों में वृद्धि करने में सहयोग करते हैं । गुणव्रतों की संख्या तीन बताई गई है ।

## 6. दिग्ब्रत (दिशापरिमाण ब्रत)

जैन-दर्शन में कहा है कि मनुष्य द्वारा यह संकल्प लेना कि मैं आजीवन पापों की विनिवृत्ति के लिए दस दिशाओं से बाहर नहीं जाऊंगा, निश्चित की गई सीमा का ध्यान रखूंगा तथा मर्यादा का पालन करूँगा, यह दिग्ब्रत है।<sup>71</sup>

## 7. उपभोग-परिभोग परिमाण ब्रत

इस ब्रत में भोजन संबंधी तथा कर्म संबंधी (व्यापार आदि) अशुभ व हिंसा का त्याग करना निहित है। इस ब्रत में भोजन संबंधी पांच व कर्म संबंधी पंद्रह अतिचार बताये गए हैं।<sup>72</sup>

## 8. अनर्थदण्ड विरमण ब्रत

प्रयोजन के विरुद्ध क्रिया करने को अनर्थदण्ड कहा गया है। इस प्रकार के कार्यों से विरमण करने को अनर्थदण्ड विरमण ब्रत कहा गया है।<sup>73</sup>

## शिक्षाब्रत

शिक्षाब्रत को शिलब्रत भी कहा गया है। शिक्षा शब्द सीखने के नियमों का अर्थ प्रकट करता है। शिक्षा ब्रत से ही महाब्रत के पालन का मार्ग खुलता है। जैन-दर्शन में चार शिक्षा ब्रत बताए गए हैं।

## 9. सामायिक ब्रत

सभी वस्तुओं, प्राणियों व अवस्थाओं में आत्म-संयम, आत्म-लीनता व समता धारण करना सामायिक ब्रत है।<sup>74</sup>

## 10. देशव्रत

दिग्व्रत में वर्णित गमन की मर्यादा में से एक अहोरात्री के लिए संक्षेप करना देशव्रत है । देशव्रत में भोजन, मैथुन, गमन का त्याग तथा मौन धारण करना सम्मिलित है।

## 11. पौषधोपवास व्रत

समन्तभद्राचार्य के अनुसार जो उपवास (चार प्रकार के आहार का त्याग) करके एक बार भोजन करता है, उसे पौषधोपवास व्रत कहा है । जैन परम्परा में यह अष्टमी, चतुर्दशी व पूर्णिमा के दिन किया जाता है । इस दिन अलंकरण व बुरे कर्मों का त्याग करके धर्म-ग्रंथों का स्मरण व ध्यान लगाया जाता है ।<sup>75</sup>

## 12. अतिथि संविभाग व्रत

जब घर पर बिना बतलाए कोई साधु-सन्त, मुनि या व्यक्ति आ जाए तो उसे भिक्षा, उपकरण, औषधि और रहने का स्थान देना अतिथि संविभाग व्रत है ।<sup>76</sup>

### 4.3.4 स्याद्वाद

जैन-दर्शन में वस्तु के अनन्त गुण स्वीकार किए गए हैं । एक समय में मनुष्य वस्तु के किसी एक ही गुण को जान पाता है । वस्तु के सभी गुणों अर्थात् यथार्थ ज्ञान केवल ज्ञान से ही सम्भव है । इसलिए जैन-दर्शन के अनुसार जो ज्ञान मनुष्य को होता है वह पूर्ण व स्थिर नहीं है, समय व परिस्थिति के अनुसार वस्तु के गुणों में परिवर्तन हो जाता है।

अतः स्वयं को सर्वज्ञ समझना सिर्फ भ्रम है और कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति होना अत्यंत कठिन है । जैनियों के द्वारा इसे पूर्ण रूप में समझने के लिए छः अन्धों द्वारा एक हाथी देखने का उदाहरण दिया गया है ।

जैन-दर्शन समस्त ज्ञान को पूर्ण न मानकर केवल सम्भावित रूप में ही मानता है । वस्तुएं अत्यंत जटिल व अनिश्चित हैं इसलिए कुछ भी निश्चित नहीं है । जैन-दर्शन वस्तुओं के जटिल स्वरूप एवं अनिश्चितता पर बल देता है । स्याद्वाद ज्ञान के सापेक्षता के रूप को स्वीकार करता है ।<sup>77</sup> वस्तु के आंशिक ज्ञान को नय कहा जाता है और जैन-दर्शन में प्रत्येक नय के आरंभ में 'सम्भव है', 'हो सकता है', अथवा 'स्याद्' या 'शायद' शब्द जोड़ने का निर्देश देता है । प्रत्येक 'नय' केवल कुछ विशेष अवस्थाओं में ही सत्य हो सकता है । हम नय को सार्वभौमिक सत्य नहीं कह सकते । विभिन्न दर्शनों के बीच मतभेद का कारण यही है कि प्रत्येक दर्शन अपने दृष्टिकोण को सम्पूर्ण मानता है और दूसरे के दृष्टिकोण को अधुरा मानकर उपेक्षा करता है । यदि प्रत्येक दर्शन यह स्वीकार करे कि उनका मत किसी विशेष परिस्थिति में ही सही है, सभी जगह सत्य नहीं है तो मतभेद दूर हो सकता है ।<sup>78</sup>

जैन-दर्शन में दृष्टिकोण के आधार पर वस्तु या उसके गुणों को कथन में प्रकट करने के लिए सात भिन्न-भिन्न प्रकार बताए हैं अर्थात् उस वस्तु या पदार्थ के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं । 1. है, 2. नहीं है, 3. है और नहीं भी, 4. अनिवर्चनीय है, 5. है और अनिवर्चनीय भी नहीं

है, 6. नहीं है और अनिवर्चनीय है, 7. है, नहीं भी है और अनिवर्चनीय है ।<sup>79</sup>

### 1. स्याद् अस्ति

किसी विशेष समय, स्थान व प्रसंग में वस्तु विद्यमान है और अपना अस्तित्व रखती है । जैसे लकड़ी की मेज मेरे कमरे में अमुक आकार और माप में विद्यमान है ।

### 2. स्याद् नास्ति

किसी विशेष समय, स्थान, प्रसंग व अन्य पदार्थ के स्वरूप के दृष्टिकोण से वस्तु विद्यमान नहीं है । लकड़ी से बनी मेज विशेष समय व काल में विद्यमान नहीं है ।

### 3. स्याद् अस्ति नास्ति

वस्तु अन्य दृष्टिकोण से विद्यमान है और नहीं भी है । एक विशेष अर्थ में मेज है और एक दूसरे विशेष अर्थ में मेज नहीं है ।

### 4. स्याद् अवक्तव्यम्

जब किसी वस्तु के विरोधी गुणों को एक साथ विचार करना हो तो उसके विषय में स्याद् अवक्तव्यम् का प्रयोग होता है । वह विवरण के योग्य नहीं है । लकड़ी की मेज की उपस्थिति व उसकी अनुपस्थिति दोनों एक साथ हैं तो भी हम उसे व्यक्त नहीं कर सकते ।

### 5. स्याद् अस्ति च अवक्तव्यम्

विशेष दृष्टिकोण से वस्तु विद्यमान है और अन्य दृष्टिकोण से वस्तु विवरण योग्य नहीं है । यह प्रथम व चतुर्थ अवस्थिति का जोड़ है । मेज है भी और अनिवर्चनीय भी है ।

### 6. स्याद् नास्ति अवक्तव्यम्

किसी विशेष दृष्टिकोण से वस्तु विद्यमान नहीं है और दृष्टिकोण स्पष्ट न होने के कारण कुछ कहा भी नहीं जा सकता । यह दूसरे और चौथे परामर्श को मिला देने पर प्राप्त होता है । लकड़ी की मेज नहीं है और अवक्तव्यम भी है ।

### 7. स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्

एक वस्तु अनिवर्चनीय है और उसके साथ ही वह है और नहीं है। इसके अनुसार लकड़ी की मेज है; दूसरी दृष्टि से नहीं है और अस्पष्टता के कारण अनिवर्चनीय है ।<sup>80</sup>

उपर्युक्त सात वाक्य न्याय-संगत हैं क्योंकि अस्ति, नास्ति और अवक्तव्यम् पर एक साथ विचार करने पर सात ही वाक्य बनते हैं । स्याद्वाद ज्ञान की संभावना की सत्यता में विश्वास करता है । इस मत के अनुसार ज्ञान समय, काल व दृष्टिकोण पर निर्भर करता है । इसलिए यह सापेक्षवाद है । बर्कले ने भी यह माना है कि वस्तु का कोई निजी गुण नहीं होता, वस्तु की सत्ता देखने वाले की अनुभूति पर निर्भर करती है ।<sup>81</sup>

#### 4.4 प्रासंगिकता

विज्ञान व तकनीकी के युग में मानव द्वारा असीम प्रगति की गई है परन्तु यह प्रगति की धारा नैतिकता के क्षेत्र में विपरीत दिशा में चली है जिससे नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विघटन बहुत तेजी से हुआ है । यह धारा किसी विशेष समाज, क्षेत्र व राष्ट्र में ही नहीं चली अपितु सम्पूर्ण जगत में नैतिकता का ह्रास हुआ है । आधुनिक दौर में मनुष्य का आर्थिक, वैज्ञानिक व भौतिक विकास तो हुआ परन्तु आध्यात्मिक व नैतिक विकास नहीं हो पाया । फलस्वरूप इस जगत में आतंकवाद, प्रसारवादी विचारधारा, हिंसा, चोरी, व्यभिचार, स्वार्थपरता व उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने विकराल रूप धारण कर रखा है जिससे परस्पर विद्वेष की भावना बढ़ती जा रही है । सम्पूर्ण जगत भय के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है । इन परिस्थितियों में हमें किसी ऐसी विचारधारा की जरूरत है जो व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करे । जैन-दर्शन का नीतिशास्त्र व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास पर बल देता है यह भौतिक से आध्यात्मिकता का मार्ग है जो मोक्ष प्राप्ति की ओर ले जाता है । इसलिए जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्य आज भी प्रासंगिक प्रतीत होते हैं । जैन-दर्शन का नीतिशास्त्र बौद्ध या अन्य दर्शनों की तुलना में कठोर है परन्तु उनका मोक्ष का मार्ग त्रिरत्न (सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान व सम्यग्-चरित्र) का सिद्धांत व्यक्ति को अपूर्णता से सम्पूर्णता की ओर ले जाता है । जैन-दर्शन में वर्णित सम्यग्-दर्शन मन में श्रद्धा की भावना उद्भव करने के लिए कहता

है । श्रद्धा की भावना से ही आदर व सम्मान की भावना का विकास होता है । जीवन में किसी भी कार्य में सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि उस कार्य के प्रति हम श्रद्धा व सकारात्मक भाव रखें । सामाजिक जीवन में भी मनुष्यों के परस्पर सम्बन्ध बनते हैं और ये सम्बन्ध तब ही अच्छे बन सकते हैं जब एक दूसरे के प्रति श्रद्धा व विश्वास हो अन्यथा प्रति क्षण भय व तनाव की स्थिति बनी रहेगी । अतः मानसिक शांति व सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाने में सम्यग्-दर्शन अहम् भूमिका निभा सकता है इसलिए यह आज भी प्रासंगिक है । आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मनुष्य के दुखों का कारण मिथ्या ज्ञान को ही सही ज्ञान मान लेना है । यदि मनुष्य को यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो जाए तो वह सद्कर्मों की ओर बढ़ता है जो मोक्ष के द्वार तक जाता है । व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य चाहे मोक्ष प्राप्ति न हो परन्तु वह अपने इस जीवन को तो सुंदर बना ही सकता है, यदि व्यक्ति का जीवन सुंदर बन जाता है तो एक सुंदर व खुशहाल समाज का निर्माण स्वयमेव हो जाता है ।

प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक संग्रह करने में लगा हुआ है, व्यक्ति अपनी भूख मिटाने के लिए मूक प्राणियों की हत्या कर रहा है तथा हिंसक घटनाएँ समाज में आये दिन घटित हो रही हैं । जैन-दर्शन में वर्णित सम्यग्-चरित्र व्यक्ति को सदाचारी बनाता है । यदि मनुष्य अपने जीवन में इन पाँच महाव्रतों, समितियों, गुप्तियों, अनुप्रेक्षाओं, द्वादश व्रत व



धर्मों का पालन करें तो समाज में विद्यमान इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है और कल्याणकारी समाज का निर्माण किया जा सकता है ।

जैन-दर्शन में प्रतिपादित स्याद्वाद का सिद्धान्त वैचारिक द्वंद्व व अहम् की भावना को कम करके सामंजस्यपूर्ण वातावरण निर्मित कर सकता है जिसकी आज अति आवश्यकता है । अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में जैन-दर्शन में वर्णित नैतिक व सामाजिक मूल्य प्रासंगिक प्रतीत होते हैं ।

#### 4.5 निष्कर्ष

जैन मत के उद्भव और विकास की लंबी परम्परा रही है । जैन-दर्शन के विकास में 24 तीर्थंकरों का योगदान रहा है परन्तु भगवान् महावीर के कारण ही इस मत को प्रसिद्धि प्राप्त हुई । भगवान् महावीर ने कहा है कि मनुष्य अपने कर्मों के कारण बंधन में बंधा हुआ है । उन्होंने बताया कि त्रिरत्न के द्वारा इस बंधन से मुक्ति पायी जा सकती है तथा कैवल्य की प्राप्ति की जा सकती है । जैन-दर्शन में वर्णित त्रिरत्न (सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-चरित्र) मनुष्य को सम्पूर्णता की ओर ले जाते हैं । जैन-दर्शन में त्रिरत्न का महत्त्वपूर्ण स्थान है । त्रिरत्न का सिद्धांत, पंच महाव्रत, समितियाँ, गुप्तियाँ, अनुप्रेक्षाएँ, दस धर्म व द्वादश व्रत को जैन-दर्शन का नीतिशास्त्र कहा गया है । इनमें सम्यग्-चरित्र सदाचार पर बल देता है । जैन-दर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य पंच महाव्रत का सिद्धांत दिया गया है जो सर्वमान्य हैं । उन्होंने

अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म माना है । जैन-दर्शन का आचार शास्त्र अन्य दर्शनों की अपेक्षा अत्यंत कठोर है परंतु गृहस्थ के लिए कुछ नियमों में लचीलापन है । स्याद्वाद का सिद्धांत अहम् सर्वेसर्वा की भावना का विरोध करके समभाव को महत्त्व देता है । स्वार्थवादी प्रवृत्ति के कारण नैतिक व सामाजिक मूल्यों का बड़ी तेजी से अवमूल्यन हो रहा है । अतः एक समतावादी, परार्थवादी व कल्याणकारी समाज के निर्माण में जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्य अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं। इसलिए जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं।

### संदर्भ सूची :

1. राधाकृष्णन, एस०, भारतीय दर्शन (भाग-1), पृ० 232-233
2. शरण, आर०, प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन का स्वरूप, पृ० 81
3. राधाकृष्णन, एस०, पूर्वोद्धृत, पृ० 232
4. शरण, आर०, पूर्वोद्धृत, पृ० 81
5. राधाकृष्णन, एस०, पूर्वोद्धृत, पृ० 233
6. शरण, आर०, पूर्वोद्धृत, पृ० 82
7. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 143
8. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, धर्म-दर्शन की रूपरेखा (द्वितीय खण्ड), पृ० 33
9. राधाकृष्णन, एस०, पूर्वोद्धृत, पृ० 238
10. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 159
11. राधाकृष्णन, एस०, पूर्वोद्धृत, पृ० 233
12. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 159-160
13. तत्त्वार्थ सूत्र, 1/1

- 
14. वही, 1/2
  15. वही, 1/4
  16. उत्तराध्ययन सूत्र, 28/14
  17. साधक, जगदीशप्रसाद जैन, फंडामेंटलस ऑफ जैनिज्म, पृ० 76
  18. वही, पृ० 77
  19. वही, पृ० 77
  20. गिरि, रघुनाथ, आचारशास्त्र (भारतीय एवं पाश्चात्य), पृ० 60
  21. तत्त्वार्थ सूत्र, 1/3
  22. मिश्र, हृदयनारायण एवं अवस्थी, जमुना प्रसाद, नीतिशास्त्र की भूमिका, पृ० 392
  23. वही, पृ० 392
  24. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 148
  25. शर्मा, नरेन्द्र कुमार, जैनदर्शनसारः, पृ० 163
  26. वही, 1/9
  27. वही, 1/13-14
  28. शर्मा, नरेन्द्र कुमार, पूर्वोद्धृत, पृ० 164
  29. राधाकृष्णन, एस०, पूर्वोद्धृत, पृ० 239
  30. वही, पृ० 239
  31. वही, 1/30
  32. वही, 1/11-12
  33. मिश्रा, मधुसूदन, हॉउसहोल्डर्स डिसिप्लिन इन जैनिज्म, पृ० 16
  34. शाह, नागिन जे०, जैन फिलोसोफी एंड रिलिजन, पृ० 42
  35. जैन, बाबूलाल, कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ, पृ० 120
  36. शर्मा, नरेन्द्र कुमार, पूर्वोद्धृत, पृ० 166
  37. सुभाषा, साध्वी, जैन-दर्शन, पृ० 141-144
  38. वही, पृ० 226-234
  39. उत्तराध्ययन सूत्र, 24/26
  40. वही, 24/21-25
  41. स्थानांग सूत्र, 5/34-35; 10-16
  42. तत्त्वार्थ सूत्र, 7/8
  43. योगशास्त्र, 2/52;1/20
  44. आचारसूत्र, 2/15
  45. तत्त्वार्थ सूत्र, 7/9
  46. मूलाचार, 1/6
  47. योगशास्त्र, 2/61

- 
48. तत्त्वार्थ सूत्र 7/3
  49. योगशास्त्र, 1/22
  50. तत्त्वार्थ सूत्र, 7/10
  51. वही, 7/3
  52. उत्तराध्ययन, अध्याय-16, गा० 1
  53. दशवैकालिक सूत्र, 8/58
  54. योगशास्त्र, 1/30-31
  55. समवायांग सूत्र, 25
  56. सर्वार्थसिद्धि, 9/25/868; 9/2/789
  57. मूलाचार, 8/2-4
  58. योगशास्त्र, 4/62
  59. मूलाचार, 8/19
  60. आचार सूत्र, 8-6
  61. योगशास्त्र, 4/70
  62. सुभाषा, साध्वी, पूर्वोद्धृत, पृ० 181
  63. योगशास्त्र, 7/84
  64. वही, 4/80
  65. गिरि, रघुनाथ, पूर्वोद्धृत, पृ० 62
  66. दशवैकालिकसूत्र, 1/1
  67. सुभाषा, साध्वी, पूर्वोद्धृत, पृ० 182
  68. वही, पृ० 183
  69. तत्त्वार्थ सूत्र, 7/15-16
  70. वही, 7/1-3
  71. सुभाषा, साध्वी, पूर्वोद्धृत, पृ० 169
  72. तत्त्वार्थ सूत्र, 7/30
  73. सुभाषा, साध्वी, पूर्वोद्धृत, पृ० 173
  74. वही, पृ० 175
  75. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 106-109
  76. सुभाषा, साध्वी, पूर्वोद्धृत, पृ० 178-179
  77. राधाकृष्णन, एस०, पूर्वोद्धृत, पृ० 245
  78. वही, पृ० 244
  79. वही, पृ० 245
  80. वही, पृ० 245-246
  81. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 151